डायबिटीज का नामोनिशान मिटा दूँगा

अरूण शकरगायें
सेनानिवृत अधिकारी
बैंक ऑफ इंडिया, भोपाल

हमारे कस्बे के एक दीक्षित जी हैं। आजकल वो कहीं नहीं मिल रहे। पुलिस की गिरफ्तारी के डर से अन्डर ग्राउन्ड हैं। वकील के घर डर–डर के फोन लगाते हैं। अग्रिम जमानत की अर्जी लगाई जा रही है। फत्तू पहलवान के गुर्गे उन्हें ढूँढ रहे है। फत्तू की माता रामवती का केस ऐसा बिगाड़ा कि वो रामप्यारी हो गयीं।

अब फत्तू पहलवान के गुर्गो की कोर्ट में कोई अग्रिम जमानत तो होती नहीं। कोई पेशी भी नहीं होती। होती है तो बस सजा वो भी उनके हिसाब से। दीक्षित जी सम्पर्क विभाग में बाबू हैं। छोटी मोटी पगार से अपनी पत्नि और दो अदद बच्चों के साथ एक सादी सी जिन्दगी गुजारते थे। एक बाबू की जिन्दगी महीने में 24–25 दिन की होती है। ये दिन होते हैं पगार के प्रथम 24–25 दिन। अखिरी 5–6 दिन न रकम रहती है न बताने लायक कुछ होता है जिंदगी में। हाँ। जहाँ थोड़ी बहुत ऊपरी कमाई की गुंजाइश हो वहाँ तो हर दिन पहली तारीख। लेकिन हमारे दीक्षित जी तो बदकिस्मती से ऐसे विभाग में रहे हैं जहाँ ऊपरी आमदनी का दूर दूर तक कोई सहारा ही नहीं। सरकारी ढाई कमरे के मकान में रहते हैं। बच्चे सरकारी स्कूल में पढ़ते हैं। अच्छा पढ़ लेते हैं। ज्यादा टोका–टाकी नहीं करना पड़ती। कोई खास आदत नहीं पाली। सिगरेट पीते नहीं। दारू तम्बाकू छूते नहीं। पान अलबत्ता कभी–कभी खा लेते हैं। वो भी खरीद कर नहीं। हाँ एक आदत जरूर पाल ली थी।

पता नहीं कहाँ से कुछ डॉक्टरों के नुस्खे हाथ लग गये। बस परिचित अपरिचित कोई बीमार का पता चला नहीं कि अपनी कपड़े की झोली लेकर पहुँच जाते थे। उनका उस वक्त बात करने का लहज़ा ही बदल जाता था। बीमारी को इतना गम्भीर बता देते कि मरीज के साथ–साथ रिश्तेदार भी

थर–थर कांपने लगते। फिर एलोपेथिक इलाज और डॉक्टरों की बुराई में भाषण देना प्रारंभ करते तो लगता जैसे कोई आतंकवादी संगठन पहले से आजाद जनता को आजादी का पाठ पढ़ा रहा हो। वैसे यहाँ यह बता देना प्रासंगिक होगा कि उन्होंने अपने बेटे को ग्यारहवीं में बॉयलाजी दिलवाई है और उसे ऐलोपैथी पढ़ाने की हार्दिक इच्छा रखते हैं। दीक्षित जी के पास हर बीमारी का कोई इलाज होता। हर बुखार उनकी पैथी में टायफाइड होता था। जरा सा सर्दी जुखाम भी निमोनिया से कम नहीं आँकते वो। कैंसर,लकवा, दमा, सफेद दाग सभी का नुस्खा उनके पास रहता। हालचाल सुनकर नब्ज़ देखकर उनके चेहरे के हावभाव तेजी से बदल जाते। फिर अत्यंत गंभीर मुद्रा में कहते– '' केस बिगाड़ लाये हो। अंग्रेजी दवाओं के चक्कर में पूरा शरीर खोखला करवा लिया है। फिर भी कोशिश करके देखता हूँ। '' ऐसा उन्हें इसलिये कहना पड़ता क्योंकि ठीक ना होने का ठीकरा उनपर या उनकी पैथी पर न फूटे। एक और सेफ्टी वाल्व वो अपने पास रखते। परहेज कुछ इस प्रकार का बताते कि एक ना एक दिन चूक होने की संभावना 99 प्रतिशत बनी रहे। एक दो मरीज जो भूले भटके ठीक हो चुके थे द्धया जो थे तो ठीक पर उन्हें यह एहसास दिलाया गया कि वो बीमार थे और उनकी दवा लेने से अब ठीक हो चुके हैं ऋ उनका बखान हर मरीज के सामने करना नहीं भूलते। इधर कुछ दिनों से उनका मन स्पेशलिस्ट बनने का बन गया। मधुमेही मरीज उन्हें सबसे मधुर टारगेट नज़र आये।

पहले भोपाल फिर इंदौर फिर नागपुर फिर औरंगाबाद। इस तरह आठ–दस शहरों में भारी सफलता के साथ 3–4 महीने में कैम्प लगाते। दफ्तर से लंबी छुट्टी चल रही थी। हर शहर में काम करने का एक ही तरीका। एक पत्रकार वार्ता करते। उसमें अपनी फोटो के साथ एक प्रेस नोट बाँटते जिसका शीर्षक होता '' डायबिटीज़ का नामोनिशान मिटा दूँगा। ''

अगले दिन से उनके होटल के कमरे में भीड़ का सिलसिला शुरू। हजार डेढ़ हजार की जाँच हर महीने। लैब वाले भी खुश। चार–पाँच हज़ार की दवायें। मरीज तीन महीने उम्मीद और खुशफहमी में जीते। तीन महीने बाद दीक्षित जी अगले शहर में। मरीज वापस अपने पुराने डॉक्टर के पास।

खूब चल निकला था धंधा। नौकरी तो पता नहीं कब से नहीं गये थे। जाने की आवश्यकता भी नहीं थी, जितनी तनख्वाह पहली तारीख को मिलती उससे कई गुना रोज गिनी जा रही थी। पत्नि, दो साले, एक साढू भी आ मिले थे पार्टनरशिप में। लेकिन ऐसे अटपटे कारनामे कभी लंबे समय नहीं चलते। पाप की हांडी एक दिन फूटती ज़रूर है। दीक्षित जी भी अपवाद नहीं रहे। फत्तू पहलवान जैसे कई भुक्त–भोगी अब खुलकर सामने आ गये हैं।

उनके खिलाफ कई थानों में एफ–आई–आर दर्ज हैं। नौकरी से सस्पेंड हैं। विभाग ने एक नोटिस अखबारों के जरिये निकाला है जिसमें उन्हें अनधिकृत रूप से कार्य से गैरहाजिर रहने का सबब पूछा गया है। बच्चे दूर के किसी रिश्तेदार के घर भेज दिये गये हैं। आगे दीक्षित जी का क्या होना हैं यह तो सर्वविदित है। लेकिन उन बेचारे मरीजों को आखिर क्या दोष जो बीस पच्चीस हजार रूपये गंवाकर तथा अपनी बीमारी और बढ़वाकर बैठे हैं। लेकिन सोचने की बात है कि क्या वे सचमुच बेचारे हैं? हाँ बेचारे तो हैं अगर मूर्ख और बेचारा शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची मान लिये जायें। भाई जब बीमारी का वैज्ञानिक उपचार उपलब्ध है, उसके अच्छे बुरे हर पहलू की समझ उपलब्ध है तो फिर हम क्यों चमत्कारिक इलाजों में फंसते हैं? हर वक्त किसी सड़क छाप को क्यों गुरू या वैद्य बनाने लपकते हैं? क्यों अपने धन और शरीर के साथ खिलवाड़ करते हैं? क्यों अपने जीवन को दांव पर लगाते हैं? क्यों? क्यों?? क्यों???

●●●